साधना के स्वर

[आलोचनात्मक संगीत-निबंध]

राधादेवी वोहरा

मूल्य २.०० रु. मात्र

प्रथम आवृत्ति

मुद्रक:—
राजश्री प्रिंटर्स
के. ई. एम रोड, बीका

SADHANA KE SWAR

by

Radha Devi Bhohara
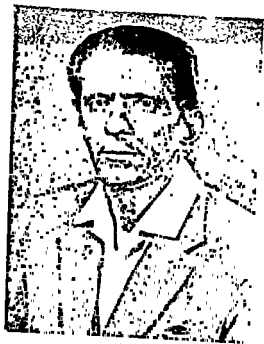
संगीत जगत के कर्मठ कार्यकर्ता
परम आदरणीय गुरुदेव
श्रीमान् **डॉ. जयचन्द शर्मा** संगीताचार्य
संचालक
श्री संगीत भारती बीकानेर, राजस्थान
को
सादर स

प्राक्कथन :

'साधना के स्वर' प्रस्तुत पुस्तक की अन्तिम निबन्ध रचना है। यह पुस्तक राजस्थान शिक्षा विभागीय 'संगीत भूषण' के पाठ्यक्रमानुसार एवं समकक्ष स्तर के छात्रों के लिये उपयोगी सिद्ध होगी, ऐसी आशा है।

श्री संगीत भारती, बीकानेर के प्रधानाचार्य डॉ. मुरारी शर्मा ने मुझे पुस्तक प्रकाशन हेतु सर्वाधिक

... एवं परोक्ष

मिलता रहा है उन सबके प्रति आभार प्रदर्शित करना अपना परम कर्तव्य समझती हूँ।

मेरे पूज्य पिताजी स्व. राधाकृष्ण जी बोहरा संगीत प्रेमी थे। उनके दुःखद स्वर्गवास के कारण आदरणीय माताजी श्रीमती आशादेवी ने मुझे संगीत शिक्षा दिलाने का उत्तरदायित्व सम्भाला। पूज्य माता-पिता के आशीर्वाद के फलस्वरूप ही यह संक्षिप्त प्रकाशन संगीत जगत् को भेंट करने का साहस कर पाई हूँ।

पुस्तक के संबंध में पाठकों के सुझाव सादर आमंत्रित हैं।

दिनांक २७ मई १९७१ राधादेवी बोहरा

संगीत अध्यापिका
राजकीय माध्यमिक कन्या पाठशाला,
रह गुवाड़, बीकानेर

साधना के स्वर

अनुक्रम

के स्वर

संगीत प्रदर्शन

ललितकलाओं में संगीत का महत्वपूर्ण स्थान है। प्राणी मात्र ध्वनि और संकेतों के माध्यम से अपने भावों का प्रकाशन करता है। मनुष्य की प्रारंभिक अवस्था में नाद और आंगिक हाव-भाव ही अभिव्यक्ति के साधन थे। वर्तमान में भी जहां भाषा सम्बन्धी कठिनाई उपस्थित होती है वहां ध्वनि एवं संकेत का प्रयोग ही भाव-प्रकाशन के लिए उपयोगी सिद्ध होता है। भाषा के भावों की पुष्टि भी संकेत एवं ध्वनि के प्रयोग द्वारा स्पष्ट होती है।

संगीत सुख जनक नाद है। गायन वादन एवं नर्त्तन को संगीत कहते हैं। व्यक्त एवं अव्यक्त दोनों प्रकार की ध्वनियां नाद के अर्न्तगत आती है। संगीत दर्पण में लिखा है—नादाब्धेस्तु परं पारं न जानति सरस्वती। संगीत सौन्दर्य युक्त अभिव्यक्ति है। संगीत सौन्दर्य, राग, ताल, एवं भाव में निहित है। संगीतमय ध्वनियां चित्त को आनन्द प्रदान करती हैं। अबोध अवस्था में भी संगीत श्रवण कर मानव हृदय परमानन्द की स्थिति को प्राप्त होता है। संगीतमय ध्वनियां एकाग्रता उपस्थित करती है।

प्रदर्शन का सम्बन्ध श्रोता और कलाकार से सदा रहता है। यदि संगीत प्रदर्शन पर विचार करने पर श्रोता व कलाकार से [illegible] श्रोता में असन्तुष्ट दिखाई देता है। श्रोता और कलाकार के इस सामंजस्य स्थापित न होने के [illegible] होता जा रहा है। इसके [illegible] संगीत एवं [illegible] के [illegible] अवश्य है। किन्तु इस विषय पर कलाकार के दृष्टिकोण से सम्बन्ध विचार करना अति आवश्यक है। आज कुछ ऐसा वातावरण भी उत्पन्न किया जा रहा है जिससे संगीत प्रदर्शन असन्तोषपूर्ण प्रतीत होते हैं।

भारतीय संगीत का विशिष्ट स्वरूप 'राग' है। किन्तु आज संगीत में राग की शुद्धता पर विश्वास करना एक समस्या बन गया है। प्राचीन काल से अब तक राग वर्गीकरण की अनेक पद्धतियों का जन्म, विकास और ह्रास हुआ है। संगीत के इतिहास में मुख्य वर्गीकरणों का क्रम इस प्रकार है—जाति वर्गीकरण, ग्राम-राग, रत्नाकर के दस राग, वर्गीकरण, शुद्ध, छायालग और संकीर्ण राग वर्गीकरण, मेल वर्गीकरण, राग-रागिनी वर्गीकरण, रागांग-वर्गीकरण तथा थाट-राग वर्गीकरण। रागों में आये विभिन्न मतमतान्तरों एवं परिवर्तनों के कारण यह बताना कठिन हो जाता है कि कौन ठीक है? भारतीय संगीत के कलाकारों ने सिद्धान्तों को शास्त्रों में रख कर मनमाने ढंग से 'राग' के नियम बना लिये हैं। उनके

का उद्देश्य मात्र स्वरों की कल्पना द्वारा स्वर जाल में चमत्कार पैदा
होता है। उन्होंने राग के अस्तित्व को ही मिटा कर रख दिया
जबकि शब्दों की रचना का उद्देश्य भावाभिव्यक्ति रहा है। स्वर
द के माध्यम से भावाभिव्यक्ति को संगीत कहा गया है। स्वर के
द का संयोग आवश्यक है पर शास्त्रीय संगीत में शब्द प्रधान गीत
उतना महत्त्व नहीं मिलता कि स्वर प्रधान गीत को। स्वरों को ही ले
दें इसकी स्थापना एवं आन्दोलन संख्या निर्धारित की जा चुकी
नायक कहता है 'सा' की कम्पन संख्या २४० है पर गायक अथवा
ने अपनी सुविधा से अथवा अनुमान द्वारा 'सा' की स्थापना कर लेता
आन्दोलन संख्या जानने की आवश्यकता महसूस नहीं की जाती।
मोनियम के आविष्कार के पश्चात तो 'सा' की संख्या बहुत हो गयी
न 'सा' शास्त्रों में रह गया और प्रयोग में आये कई 'षड्ज'। उसी
राग की गायकी—आवाज निकालने व लगाने का ढंग आलापचारी,
की बन्दिश और उसकी भरावट, तान तथा उपज, लय-ताल के प्रयोग
ही सीमित है। भावाभिव्यक्ति का प्रश्न गायन-शैली में कहीं भी
नहीं जिससे राग में रस-संचार की अपेक्षा राग द्वेष की सम्भावनाएं
रहती हैं। कलाकार स्वरों की कल्पना में इतना खो जाता है कि
राग के स्वरों को छोड़ कर अन्य स्वरों के प्रयोग करने से भी नहीं
ता। जबकि सत्य यह है कि भूल से अथवा साधना के अभाव में विवादी
ों का प्रयोग हो जाया करता है।

कत्थक नृत्य को ही ले लीजिये, ताल-प्रदर्शन का जो कार्य तबले का
तक अपने पांवों से करता है। कोई उनसे पूछे इस तरह पांव पीटने
या बुरी तरह चक्कर लगाने से उनका क्या उद्देश्य है? सारे कत्थक
में एक दो ही आमद है जिसमें ही कृष्ण आ जाता है और उसे ही राधा

कर लेती है। संगत-पार्टी भी उसी को प्रदर्शित करना अपना धर्म समझते हैं। सबकी एक ही गति, एक ही शैली है; ऐसा क्यों? क्या हाथ में मुरली पकड़ने और सर पर मटकी रखने से राधा-कृष्ण के भाव अपने आप में पूर्ण है? किन्तु यह परम्परा नृत्य के घरानों में चली आ रही है। इसे मिटाया नहीं जा सकता, इस प्रकार का अन्धविश्वास कलाकारों का बन गया है। आज समस्त भारत में गायन, वादन तथा नृत्य के घरानेदार कलाकार अधिक मात्रा में छाये हुए हैं जो अपने विरोध में उठने वाली आवाज को आसानी से दबा देते हैं। मन्दिर से दरबार तक, आराधना की कला को विलासिता की ओर ले जाने वाले असल में ये ही अपढ़ घरानेदार कलाकार हैं; जिन्होंने इस कला की महत्ता को न समझा, केवल मनोरंजन का साधन बना कर रख दिया। देवमुख से निकला संगीत मुगल काल में इस निम्न वर्ग के हाथों पड़ा जहां चमत्कारिकता एवं मनोरंजन ने इस पर शासन किया। तानसेन ने 'तू तू कर कुत्तों को' एवं कांव-कांव कर कौवों को इकट्ठा कर दिखाया। क्या इसे गायन की संज्ञा देंगे? तलवारों पर कूदना, आग पर उछलना ही क्या नाच है? लेकिन इस प्रकार का चमत्कारिक प्रदर्शन ही तब से अब तक इस कला का मुख्य उद्देश्य रह गया है। मुंह बिगाड़ कर गाना-बजाना, बुरी तरह चक्कर खाना ही शास्त्रीय संगीत की परिभाषा बन गयी है। इस कटु सत्य को छुपाया नहीं जा सकता। कलाकारी का दम्भ भरने वाले आलोचना को सह नहीं सकते। उनका एक निश्चित समुदाय है जो उनकी तारीफ करता है। जब तक कलाकार में आलोचना सहने की शक्ति न आयेगी, वह कला का क्या उद्धार करेगा?

किसी विषय की उन्नति श्रेष्ठ आलोचकों से सम्भव होती है। निष्पक्ष आलोचना कला में निखार लाती है। लेकिन शास्त्रीय संगीत

आलोचकों का सर्वथा अभाव है। इस कमी को स्व० भातखण्डे जी ने अपनी पुस्तकों में बार-बार दोहराया है। आचार्य बृहस्पति के अनुसार भी शास्त्रीय संगीत के प्रदर्शन एवं शास्त्रीय पक्ष को उन्नत बनाने का यदि कोई उपाय है, तो वह है विषय की आलोचना। इस विषय की आलोचना में जो मुख्य कठिनाई है वह है—'कलाकार शास्त्र से दूर है तथा शास्त्रकार क्रियात्मक पक्ष से'। जब तक दोनों पक्षों में इसके स्नातक समान रूप में तैयार नहीं हो जाते, इस प्रकार की कमियों को मिटाना कठिन होगा।

यह तो था शास्त्रीय संगीत अब जरा लोक-कला की स्थिति भी देखिये। पारिवारिक गीतों की धुनें आज सिने-संगीत की धुनों से प्रभावित मिलेंगी। यही हाल व्यावसायिक जातियों द्वारा गाये जाने वाले संगीत का है। लोक कला मंडलियों में अब प्रायः हारमोनियम, वायलिन, क्लार्नेट आदि विदेशी वाद्य-यन्त्रों का प्रयोग देखने को मिलेगा। लोक रंगमंच भी विभिन्न कर्टन, साईडविंग्स, माईक मर्च-लाईट आदि आधुनिक उपकरणों से सुसज्जित होगा। प्रदर्शन स्थल का चुनाव भी अच्छे थियेटर को देखकर किया जायेगा। टेपरेकार्ड आदि आधुनिक उपकरणों से प्रभावित ऐसी कला को लोक-कला की बजाय शिष्ट-कला कहें तो ज्यादा उपयुक्त होगा। फिल्म तथा रेडियो में लोक-कला का निर्देशन ऐसे व्यक्तियों की देख-रेख में है जो लोक-जीवन से कोसों दूर हैं। शहरी आवरण पहने उनका मस्तिष्क विदेशी फैशन से प्रभावित मिलेगा। इस प्रकार से परम्परागत चली आ रही लोक-कला आधुनिक समाज में कहां तक सुरक्षित है यह बताना कठिन है। सरकार ने इस कला की उन्नति के लिये रेडियो, संगीत नाटक एकादमी, लोक कला मंडल आदि विभागों की स्थापना की है। रेडियो द्वारा लोक-कला का प्रसार प्रायः होली के अवसर पर दीपावली के गीतों का, सर्दी में गर्मी के गीतों का आदि रूप में सुनने को मिलता है।

क्या लोक संगीत में अवसर के गीतों का अभाव है ? पर इस प्रकार के महत्वपूर्ण प्रश्नों को वहां गौण समझा जाता है। संगीत नाटक अकादमी ने लोक-गीतों की स्वरलिपि का कार्य भार सम्भाला है। पर अब तक जितनी भी प्रकाशित पुस्तकों में स्वरलिपियां उपलब्ध हुई हैं, वे अपने मूल रूप को खो बैठी हैं। व्यावसायिक जातियों ने सामाजिक बहिष्कार एवं आर्थिक स्थिति के दयनीय होने की दशा में इस कला को छोड़ने में ही अपना हित समझा। समाज ने उनकी कला की वो कद्र नहीं की जितनी कि होनी चाहिये। लोक-कला को बनाने वाला और मिटाने वाला समाज ही है। वास्तविक कलाकार जो केवल कला के लिये जीते थे प्रायः समाप्त हो गये हैं, बन गये वे-जो सरकारी नौकरी को एवं आधुनिक धारा को जान गये। समाज ने भी ऐसे वर्ग को ही स्थान दिया। लेकिन नये बने आधुनिक कलाकारों की कला, लोक संस्कृति की रक्षा कर सके ऐसी प्रबल नहीं है। हां उसे तोड़-मोड़ कर रख सकती है। लोक-कला की सुरक्षा का कोई सहज उपाय है तो वह परम्परागत चले आ रहे उन लोक कलाकारों को प्रोत्साहन देना जिनका जीवन सिर्फ कला के लिये है।

अन्त में मेरा विनम्र सुझाव है कि कला पर विस्तृत अध्ययन करने के पश्चात् साधना करके ही रंगमंच पर प्रदर्शन करना कलाकार अपना कर्त्तव्य समझे। इस कला को उपयोगी बनाने हेतु इसे भावों की दुनियां से पृथक् न किया जाय।

स्वर ही ईश्वर

भारतीय संगीत अपने आप में एक व्यापक भावार्थ रखता है। गीत मानव जीवन में पूर्णतया सबंधित है। यह विषय मात्र क्षणिक नोरंजन हेतु ही नहीं है अपितु लोक कल्याण एव मोक्ष प्राप्ति का र्वश्रेष्ठ साधन भी है। श्रेष्ठ महात्मा नाद-ब्रह्म की साधना कर भवसागर ार उतरते हैं। वैदिक काल से यह मान्यता चली आ रही है कि गीत आत्मानन्द एव परमानन्द का सर्वश्रेष्ठ साधन है।

प्रकृति के कण-कण से जब मधुर नाद का श्रोत बहता है स समय बिरला ही होगा जो अपनी सुध-बुध न खो बैठे। वास्तव में गीत का आनन्द तभी प्राप्त हो पाता है जब साधक को स्वर लहरी रिमा को छूती हो। भारतीय संगीत में अपूर्व शक्ति है जो पशु-पक्षी क को अपनी ओर सहज में ही आकर्षित कर लेती है। ऐसे संगीत

को पाने के लिए ऋषि, मुनि, ज्ञानी सभी तरसते हैं। संगीत का सच्चा उद्देश्य सुख-शान्ति की स्थापना कर लोक कल्याण करने में निहित है।

आज का संगीतज्ञ ऐसी साधना से काफी दूर है। संगीत का सच्चा आनन्द ग्रहण करना आज दुर्लभ हो रहा है। काल्पनिक सुख के माया-जाल से घिरा साधक संगीत के बाह्य आकर्षण पर ही मुग्ध है जिससे संगीत के सत्य स्वरूप की तह तक पहुंचने का मार्ग वह खो बैठा है। संगीत उसके लिये आनन्ददायक न होकर घुटन का विषय बन गया है। वह अपनी साधना से स्वयं ही सुखी नहीं है ऐसी स्थिति में अन्य को सुख पहुंचाया जा सके ऐसी आशा करना व्यर्थ प्रतीत होता है। वर्तमान में संगीत का उपयोग साधकों द्वारा जीविकोपार्जन हेतु किया जाने लगा है।

सभी प्राणी अपने जीवन की रक्षा चाहते हैं। जीवन को विपत्ति से बचाने के लिए उचित अनुचित का ध्यान भी नहीं रखा जाता। मनुष्य अपने कष्टों को टालने के लिये हवन, व्रत, भजन, कीर्तन आदि साधनों का सहारा लेता रहा है। मनुष्य समस्याओं से मुक्त होने का प्रयास दिन-रात करता है किन्तु उसे शांति कहीं नहीं मिलती। संगीत के नाद अथवा स्वरों में ऐसा आकर्षण है कि मनुष्य का चित बाह्य संसार चक्र की समस्याओं को कुछ समय के लिये भूला बैठता है। इन स्वरों का कार्य सृष्टि के प्रतिपालक भगवान विष्णु के समान ही है जो मनुष्य के जीवन की रक्षा करते हैं। स्वरों में प्राण संचार करने की शक्ति है। मनुष्य इनका रसास्वादन कर नवीन स्फूर्ति एवं चेतना को अनुभव करता है। ईश्वर श्रेष्ठ मानव को भी कहा जा सकता है जो संसार का सदैव हित करते हैं। स्वरों की उपासना

...त्मा की ससार हित में सहायक है। ईश्वर को निराकार समझा ...ता है तो स्वरों का आकार भी निर्धारित नहीं है। इसीलिए स्वर ...ो ईश्वर की संज्ञा दी गई है।

आज का स्वर-साधक फिर भी असन्तुष्ट है। संसार में, अपने ...र में। कारण है महत्वाकांक्षा। स्वर का ईश्वरीय गुण ऐसे साधकों ... कारण ही स्थापित है जो मर कर भी अमर है।

≠≠

स्वरलिपि से लाभ-हानि

संगीत संस्कृति की धरोहर है। इस विषय पर किसी व्यक्ति प्रदत्त समूह का एकाधिकार उचित नहीं। प्राचीन काल से ही यह गुरुमुखी विद्या रही है। इसलिये इसका शिक्षण कठिनतम रहा है। स्वरलिपि के आविष्कार से पूर्व संगीत के जिज्ञासु छात्र को पूर्णतया गुरु पर निर्भर रहना पड़ता था। इस प्रकार की शिक्षा में गुरु-शिष्य दोनों के समक्ष अनेक प्रकार की कठिनाइयां थीं। धन एवं समय का व्यय संगीत शिक्षा हेतु उस काल में अधिक होता था। गुरु एवं शिष्य दोनों की संख्या कम थी। गुरु का प्राप्त होना कठिन था। संगीत विषयक रचनाओं के प्रकाशन का पूर्णतया अभाव था। इस प्रकार संगीत की शिक्षा साधनों के अभाव के कारण बड़ी जटिल थी।

ऐसी परिस्थिति में अधिकांश गुरुजन शिष्यों के प्रति अपने कर्तव्य पालन में रुचि लेते प्रतीत नहीं होते थे। गुरु योग्य पात्र (शिष्य) को ही संगीत शिक्षा के लिये चुनता था। शिष्य को अपने शिक्षा काल में गुरु के

जन में ही रहना होता था। गुरु शिष्य को अनेक परीक्षा लेने के बाद ही शिक्षा देना स्वीकार करता था। गुरु वाणी ही शास्त्रीय एवं वाणी समझी जाती थी। इस प्रकार की शिक्षा प्रणाली में तर्क का कोई स्थान नहीं था। गुरु की आज्ञा पालन करना शिष्य का परम कर्त्तव्य माना जाता था। कहने का तात्पर्य यह है कि गुरु की इच्छा एवं आज्ञा सर्वोपरि समझी जाती थी।

इस काल में एक गुरु दूसरे के प्रतिद्वन्दी हुआ करते थे तथा शिष्यों में इसी प्रकार की भावनाओं को प्रसारित किया जाता था। गुरु अपने प्रिय पात्र छात्र-जो उनके स्वार्थों में सहायक होता था-को ही विशेष रूप शिक्षा देते थे। किन्तु ऐसे छात्रों पर भी गुरु पूर्णतया विश्वास नहीं करते थे। ज्ञान का महत्वपूर्ण अंश वे अपने साथ ही इस लोक से लेकर चले जाते थे। संगीत कला के ह्रास का यह भी एक महत्वपूर्ण कारण रहा है।

दूसरी ओर कुछ ऐसे गुरु भी थे जो शिष्य की उन्नति के सम्बन्ध विचारशील थे। संगीत का प्रचार एवं प्रसार करना उनका प्रमुख ध्येय था। शिष्य की समस्या को यथासम्भव दूर करने का प्रयास वे करते रहते थे ऐसे संगीत-सेवी शिक्षकों के प्रयास का फल ही स्वरलिपि है। स्वरलिपि के आविष्कार के पश्चात् गुरुजनों की संगीतविषयक अधिकारपूर्ण भावना का अन्त हुआ जिससे जन साधारण के लिए संगीत शिक्षा सुलभ हो सकी।

स्वरलिपि के बाद संगीत जगत में विशेष परिवर्तन आया जिससे कई प्रकार के लाभ एवं हानि प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से सामने आए। संगीत

क्रियात्मक विषय विशेष है। संगीत सम्बन्धी ध्वनियों के संकेतों का ज्ञान जब से इस क्षेत्र में हुआ तब से परम्परागत अमूल्य रचनाओं की सुरक्षा तथा संग्रह करने सम्बन्धी कार्य आरम्भ हुआ। शिष्य एवं अध्यापक दोनों को ही पठन-पाठन में सुविधा प्राप्त हुई। क्रियात्मक पक्ष की पुस्तकें प्रकाशित होनी प्रारम्भ हुई। संगीत प्रेमी जिज्ञासु अपनी रुचिपूर्ण रचनाओं का चुनाव वर्तमान में कर पाता है। रेडियो रिकार्ड आदि वैज्ञानिक उपकरण रचना के अनुकरण कराने में सहायक हो सकते हैं किन्तु स्वरलिपि ही रचना की वास्तविकता से परिचय कराने में सहायक है। स्वरलिपि के आविष्कार के पश्चात् संगीत का कुछ अंशों में स्वाध्याय करना भी सम्भव हो सका है।

स्वरलिपि के सहयोग द्वारा गाई गयी रचना बहुत ही नीरस प्रतीत होगी। स्वरलिपि गायन संबंधी प्रत्येक ध्वनि को व्यक्त करने में पूर्ण समर्थ नहीं है। इसका प्रयोग तो केवल काम चलाने के लिये ही प्रारम्भ हुआ है। जब तक स्वरलिपि अपने आप में पूर्ण नहीं हो जाती तब तक परम्परागत गुरुजनों पर निर्भर करना पड़ेगा।

की संख्या में निश्चित रूप से वृद्धि हुई किन्तु योग्यता एवं स्तर की दृष्टि से साथ-साथ कमी भी हुई। इधर रचनाओं की संख्या भी बढ़ी, छात्र को अपनी रुचिनुसार रचना के चुनाव करने का अवसर भी प्राप्त हुआ किन्तु परिणाम यह हुआ कि शिष्य और शिक्षक दोनों को ही रचनाओं की अल्प मात्रा में याद रहने लगी।

स्वरलिपि संगीत के अन्य साधनों से अधिक स्थाई अभिव्यक्ति है। स्वरलिपिकार की कोई त्रुटि जो प्रकाश में आ चुकी हो, चाहे जाने में हो अथवा अनजाने में, समाज को भी भुगतनी पड़ती है। अतः स्वरलिपिकार की योग्यता एवं दिलचस्पी के बिना यह कार्य समाज हित में नहीं हो सकेगा।

अनेक विद्वानों ने स्वर संकेत निर्धारित किये हैं। उनमें से बहुत से प्रचलित भी हैं। छात्र को अपनी जिज्ञासा पूर्ति हेतु सभी के स्वर संकेतों को सीखना अनिवार्य हो जाता है। स्वरलिपि में सरलता, योग्यता, स्पष्टता, संक्षिप्तता इस प्रकार के मुख्य चार गुण होने आवश्यक हैं। वर्तमान में अनेक स्वरलिपि प्रणाली प्राप्त होती हैं किन्तु ऊपर बताये गये गुणों से सम्पन्न नहीं हैं, एक ओर तो दोषपूर्ण स्वरलिपि प्रचलित है तो दूसरी ओर उनकी विभिन्न प्रणालियाँ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि स्वरलिपि के आविष्कार के पश्चात् संगीत जगत् ने बहुत कुछ पाया और खोया। संगीत सामूहिक शिक्षा के रूप में सामने आया। परम्परागत कलाकारों का एकाधिकार भी समाप्त हुआ किन्तु इन सब लाभों के विपरीत प्राप्त हुए अनेक दोषों से भी छुटकारा नहीं मिल सका।

संगीत-शिक्षक और कलाकार

भारत के कलाकार सदैव से ही संसार में अपना विशिष्ट स्थान रखते आये हैं। संगीत शिक्षा का कार्य भी कलाकारों द्वारा ही सम्पन्न होता रहा है। संगीत विषय के शिक्षक और कलाकार दो अलग व्यक्ति नहीं रहे है। कला-प्रदर्शक ही शिक्षक का कार्य एवं व्यवसाय भी करते रहे हैं।

स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व संगीत शिक्षा का प्रचार व्यावसायिक जातियों के मध्य था। अन्य लोग संगीत का आनन्द तो लेते थे किन्तु इस विषय को व्यवसाय के रूप नहीं अपनाते थे। स्वतन्त्रता प्राप्ति पश्चात् शिक्षण संस्थाओं में संगीत शिक्षकों की विशेष मांग बढ़ी। उसी प्रकार आकाशवाणी, चित्रपट संगीत तथा अन्य प्रदर्शन संस्थाओं में कलाकारों को कार्य एवं स्थान मिला। अतः धीरे-धीरे कला-प्रदर्शन एवं शिक्षण का व्यावसाय पृथक् होता चला गया।

कलाकार राज्याश्रय में पलते रहे हैं। राजतन्त्र में कलाकारों का

लेकिन इससे पूर्व प्राश्रयदाता को कला द्वारा प्रसन्न करने तक ही सीमित किन्तु वर्तमान में समाज के प्रति उसका उत्तरदायित्व विशेष है। अतः शिक्षा-प्रणाली का उद्देश्य एवं लक्ष्य भी परिवर्तित हो चुका है।

व्यावसायिक कलाकार का धर्म कला-प्रदर्शन में तथा शिक्षक का कला की शिक्षा देने वाले व्यक्ति विशेष से लिया जा सकता है। कलाकार कौशल प्रदर्शन करने में तथा शिक्षक का शिक्षा दान में निहित है।

शिक्षक का संबंध छात्रों से होता है। अतः छात्रों की जिज्ञासा एवं शंकाओं को हल कर सकने में शिक्षक का निपुण होना आवश्यक है। कलाकार का संबंध श्रोता से होता है। श्रोता की मांग को पूरी करने के गुण कलाकार में होना आवश्यक है।

संसार के प्रति अपनी अनुभूति को कलाकार व्यक्त करता है। कलाकार की अभिव्यक्ति का उचित-अनुचित द्वारा मूल्यांकन नहीं किया जाना चाहिये। शिक्षक मात्र कला का आदर्श स्वरूप ही सामने रखता है। केवल उचित की शिक्षा देना ही शिक्षक का कर्त्तव्य है।

शिक्षक का मानसिक स्तर विस्तृत अथवा उन्नत होता है। उसे कला मर्मज्ञ, कलाआलोचक, कला–व्याख्याता भी कहा जा सकता है। कलाकार को कला–प्रदर्शन करने हेतु कौशल को जुटाने के लिये साधना करनी होती है। साधना करने में विशेष रूप से शारीरिक श्रम लगता है।

कला के संस्कार डालने वाला शिक्षक होता है। कलाकार कला विषयक वातावरण तैयार करता है। समाज की मनोरंजन संबंधी माग को एक कलाकार ही पूर्ण कर सकता है, शिक्षक नहीं। प्रायः श्रेष्ठ शिक्षक श्रेष्ठ कला-प्रदर्शक नहीं होते। उसी प्रकार श्रेष्ठ कलाकारों में योग्य शिक्षक के गुणों का अभाव होता है। शिक्षक का कार्य समाज को ज्ञान-मार्ग

से परिचित कराना है। एक कलाकार से ज्ञान प्राप्ति और शिक्षा मनोरंजन की आशा करना व्यर्थ है। शिक्षा का उद्देश्य मनोरंजन नहीं बल्कि व्यक्ति और समाज का सर्वांगीण विकास करना है।

वर्तमान में कुछ कलाकार शिक्षक के रूप में भी कार्य कर रहे हैं उनकी शिक्षा व्यक्ति विशेष को कलाकार बनाने के उद्देश्य को लेकर चल है। कलाकारों की शिक्षा, शिक्षण-संस्थाओं के उपयुक्त नहीं है। कलाक परम्परागत संगीत को महत्व देते हैं। वे प्रयोगवादी नहीं होते। कलाक -शिक्षक से शिक्षा प्राप्त विद्यार्थी बौद्धिक युग की मांग को पूरा करने सफल सिद्ध नहीं होता। कलाकार-शिक्षक छात्र को संगीत साधक बन में निश्चित रूप से सफल हुए हैं। किन्तु उनकी शिक्षा छात्र के सर्वां विकास कर सकने में सफल नहीं कही जा सकती। ऐसे कलाकार न कला-प्रदर्शक का उत्तरदायित्व पूर्ण रूप से निभा रहे हैं और न शिक्षक का।

दूसरी ओर कुछ शिक्षक जिनकी नियुक्ति एवं व्यवसाय पूर्णतया शिक्षक के रूप में है किन्तु कला-प्रदर्शक के रूप में भी स्वयं को सामने लाने की चेष्टा कर रहे हैं। ऐसे शिक्षक भी पूरी तरह न तो संगीत-साधक ही हैं और न वे अपने छात्रों के प्रति कर्त्तव्य का पालन ही पूर्णतया कर रहे हैं।

कहने का तात्पर्य यह है कि शिक्षक एवं कलाकार दोनों को अपने कर्त्तव्य एवं उत्तरदायित्व के प्रति सजग रहना चाहिये। संगीत विषय की उन्नति तभी संभव है जब दोनों अपने व्यवसाय की उन्नति में प्रयत्नशील रहे। वर्तमान में संगीत विषय में प्राप्त दोषों से बचने के लिये यह आवश्यक प्रतीत होता है।

≠≠

स्वतन्त्र भारत में संगीत

∾ ∾ ∾ ∾ ∾ ∾ ∾ ∾ ∾ ∞ ∞ ∞ ∞ ∞ ∞ ∞

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् संगीत की शिक्षा को उच्च प्राथमिक कक्षाओं में स्नातकोत्तर तक की कक्षाओं के पाठ्यक्रम में एच्छिक विषय के रूप में सम्मिलित किया जा चुका है। संगीत-शिक्षण-संस्थाओं में विशेष पाठ्यक्रम का प्रावधान रखा गया है। विशेष पाठ्यक्रम सरकार द्वारा एवं संगीत-समाज द्वारा निर्धारित कर संचालित किया जा रहा है। छात्र-छात्राओं को संगीत शिक्षा प्रदान करने हेतु पर्याप्त साधन जुटाने जा रहे हैं।

समय-समय पर संगीत-नाटक अकादमी, आकाशवाणी, केन्द्रीय एवं राज्य सरकार कलाकारों को प्रोत्साहन, पुरस्कार एवं सम्मान प्रदान करते रहते हैं। नवोदित कलाकारों को प्रगट करने हेतु अनेक संस्थाएं सक्रिय रूप में भाग लेती दिखलाई देती है। छात्र-छात्राओं को संगीत-शिक्षा प्राप्त करने में आर्थिक सहयोग देने की व्यवस्था भी वर्तमान में है।

संगीत का प्रकाशन कार्य भी छापाखाना के विकास एवं स्वरलिपि

के आविष्कार के पश्चात् विकसित हुआ है। अनेक प्रकाशन संस्थान सं
की पाठ्य पुस्तकों का प्रकाशन करते रहते है। मासिक एवं त्रैमा
पत्रिकाएं भी संगीत के प्रचार-प्रसार में अपना महत्वपूर्ण योग दे रही
'संगीत मासिक' (संगीत कार्यालय, हाथरस) 'संगीत कला विहार' (अ
भारतीय गांधर्व मंडल, मिरज) 'कलानुसंधान पत्रिका' (श्री संगीत भा
शोध विभाग, वीकानेर) 'सुलभ संगीत मासिक', (सुलभ संगीत प्रका
आगरा) 'संगीतिका' (संगीत सदन प्रकाशन, इलाहाबाद) 'म्युजिक बुले
(बम्बई विश्वविद्यालय, बम्बई) 'संगीत कला विहार इन्गलिश सप्लीमे
(इण्डियन म्युजिकलोजिकल सोसायटी, बड़ोदा) आदि महत्वपूर्ण मासि
एवं त्रैमासिक पत्रिकाएं है।

संगीत-शिक्षक-प्रशिक्षण पाठ्यक्रम एवं शिक्षण-व्यवस्था भी अल्पकाली
शिविर के रूप में आयोजित की जाती है। परीक्षा लेने वाली कुछ संस्था
ने इसकी व्यवस्था भी अन्य विषय के प्रशिक्षण-पाठ्यक्रम के अनुसार प्रार
कर दी है। संगीत शिक्षा को सामूहिक-शिक्षा-प्रणाली के उपयुक्त बना
का सर्वाधिक श्रेय, श्री संगीत भारती, बीकानेर के संचालक डॉ. जयच
शर्मा को है। संगीत-शिक्षा में चार्टस, मॉडलस् चित्र आदि शिक्षण उपकर
डा. शर्मा की मौलिक सूझ-बूझ का परिणाम है।

संगीत विषयक शोध ग्रन्थ भी वर्तमान में प्रकाश में आये हैं। विशे
रूप से दक्षिण और उत्तर भारतीय संगीत तथा पाश्चात्य एवं भारती
संगीत के समन्वय का कार्य अनेक विद्वानों द्वारा सम्पादित हो रहा है
संगीत के लोकपक्ष तथा साहित्यिक पक्ष पर भी शोध कार्य हो रहे हैं। संगी
के भाव-पक्ष पर भी कार्य हुआ है। तात्पर्य है कि संगीत के तीनों पक्ष
पर शोध, सर्वेक्षण, प्रयोग आदि कार्य अनेक शोध संस्थाएं कर रही हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय सांस्कृतिक आदान-प्रदान योजना के अन्तर्गत किये जाने वाले प्रदर्शन लोक-भ्रातृत्व की भावना का उच्च आदर्श है। इस प्रकार के प्रदर्शनों से संगीत-प्रदर्शकों को अन्तर्राष्ट्रीय स्तर तक की ख्याति प्राप्त कर सकने का साधन प्राप्त हुआ है। संगीत कला के लोक पक्ष अथवा शास्त्रीय पक्ष में से किसी पर भी कार्य करने वाला संगीतज्ञ वर्तमान में सरकार एवं समाज से पर्याप्त फल पा रहा है। संगीत को लोकप्रिय बनाने में चित्रपट ने सर्वाधिक योगदान दिया है। चित्रपट-संगीत लोकरंजन का सर्वश्रेष्ठ साधन बन गया है। आकाशवाणी द्वारा संगीत का उपयोग व्यावसायिक उन्नति हेतु विज्ञापन के रूप में भी किया जाता है। आकाशवाणी से लोक संगीत, सुगम-संगीत एवं शास्त्रीय संगीत के कार्यक्रम, वार्ताएं संगीत-पाठ, समाचार, नाट्य आदि प्रसारित होते रहते हैं। प्रत्येक स्तर का संगीत-प्रेमी अपने अनुकूल जिसे समझता है उस कार्यक्रम से लाभान्वित हो सकता है।

छात्र-छात्राएं सम्मिलित स्वरों में वर्ग-भेद भूला कर पाठशाला में गाते हैं। इससे सहयोग एवं भ्रातृत्व की भावना का प्रसारण बढ़ा है। शिक्षण संस्थाओं में संगीत व्यक्ति एवं लोक का कल्याण कर सकें ऐसी भावना से अपनाया जा रहा है। शाला में अनुशासन, छात्र-छात्राओं की आपसी प्रेम मानसिक सुख, व्यावसायिक उन्नति, कार्य-कौशल के विकास आदि कार्यों में सामूहिक गीतों का योगदान है जो भारत में स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् अधिक विकसित हुआ है।

विदेशी एवं लोक-संगीत का प्रभाव स्वतन्त्रता प्राप्ति पश्चात् भारतीय संगीत पर अधिक पड़ा है। वाद्य-वृन्द, नृत्य-नाटिकाएं, सामूहिक-गीत आदि विकसित हुए हैं। दूसरी ओर संगीत की ध्वनियों के प्रभाव को जानने

संबंधी प्रयोग भी इस क्षेत्र में प्रारम्भ हुए हैं। ध्वनि-विज्ञान की उन्नति से संगीत की महत्ता बढ़ी है तथा सङ्गीतज्ञों का जीवन-स्तर सुधरा है सङ्गीत कला जहां व्यावसायिक जातियों अथवा सीमित व्यक्तियों के बीच में थी वह अब जनमानस के उपयोग का विषय बन गयी है। शिक्षण-संस्थाओं में संगीत को स्थान मिलने के फलस्वरूप वाद्य-यन्त्र बनाने वाले कारखानों का व्यवसाय भी पनपा है। सरकार एवं समाज ने कला एवं कलाकारों को पनपाने में इस युग में जितना सहयोग दिया है उतना कभी नहीं दिया।

संगीत विषयक पुस्तकालयों एवम् सग्राहलयों की सख्या में वृद्धि हुई। जिसमें देशी और विदेशी संगीत साहित्य, उपकरणों का संग्रह, प्रकाशन एवं उनकी सुरक्षा संभव हो सकी। कलाकारों की ध्वनियों को सुरक्षित रखने में रिकार्ड का पूरा सहयोग प्राप्त हुआ। रिकार्ड-लाइब्रेरी स्थापित हुई। रेडियो एवम् चलचित्रों का भी संगीत-शिक्षा, के प्रचार एवम् प्रसार में योग रहा है। इस प्रकार वैज्ञानिक उपकरणों का सहयोग स्वतंत्रता प्राप्ति पश्चात् भारतीय संगीत के विकास में सहायक हुआ।

कलाकारों की व्यावसायिक कटु प्रतिस्पर्द्धा भी स्वतन्त्रता प्राप्ति पश्चात् अधिक बढ़ी। कला सम्बन्धी कार्य करने के निर्णय व्यक्तिगत स्वार्थों पर अवलम्बित हुए। प्रतियोगिताओं का आदर्श रूप भी स्वस्थ नहीं रहा। प्रदर्शनों से अधिकांश प्रोत्साहन अनुचित व्यक्तियों को मिला अथवा कुछ ने ही वारम्बार लाभ उठाया। सगीत की साधना की बजाय युगानुसार ढलने की साधना पनपी। कलाकार-समाज के प्रायः सभी प्रयत्न स्वार्थ-पूरक हो गये हैं तथा स्वेच्छ से कार्य करने की भावना का भी अन्त प्रायः हो गया है।

ख्याल गायन-शैली

प्राचीनकालीन गायन-शैलिया मोक्ष प्राप्ति का साधन समझी जाती रही है। संगीत की साधना योग साधना से कम नहीं थी। अंत: बहुत कम व्यक्ति इस विषय को अपनाते थे। शास्त्रीय संगीत श्रेष्ठ मनुष्यों के उपभोग की वस्तु थी। सामारिक इसके रसास्वादन के लिये सदैव लालायित रहते थे। संगीत एव भक्ति ईश्वर प्राप्ति का सुलभ साधन समझा जाता था।

परिस्थितिवश भारत की शासन व्यवस्था विदेशी शासकों के आश्रय में चली गई। मन्दिरों का संगीत दरबारों की शोभा बना। ईश्वर को प्रसन्न करने वाले संगीत साधक अपने आश्रयदाताओं के गुण-गान करना अपना सौभाग्य समझने लगे। प्राचीन गायन-शैलिया नवीन परिस्थिति के अनुकूल नहीं थी। फलस्वरूप नवीन गायन-शैलिया बनी। जिसमे 'ख्याल' का स्थान वर्तमान मे प्रचलित सभी गायन-शैलियों मे विशिष्ट है।

अधिकांश विद्वान् इसे 'ख्याल' नाम से संबोधित करते हैं तथा इसका

अर्थ कल्पना से लगाते हैं। दूसरी ओर डा. मुरारी शर्मा ने इसे 'ख्याल' कहा है तथा अपनी पुस्तक 'शेखावटी के ख्याल' (संगीत-पक्ष) में इसका अर्थ खेल-तमाशों से लगाया है। आपने राजस्थान की लोक-रंगमंची गायकी 'ख्याल' से संबंध स्थापित कर अपने मत की पुष्टि की है।

यह तो बता दिया ही जा चुका है कि शासकों के मनोरंजन हेतु 'ख्याल-गायकी' का आविष्कार किया गया। चमत्कार एवं वैचित्र्य प्रदर्शन करना ही इस गायन-शैली का चरम लक्ष्य रहा है। इस गायन-शैली में ध्रुपद, धमार के समान लयकारी प्रदर्शन, स्वर वैचित्र्य एवं भाव प्रदर्शन को समान रूप से स्थान मिला है। ख्याल गायकी ने तबले को जन्म दिया। ध्रुपद, धमार, शैली सामूहिक—संगीत के लिये अधिक उत्तम थे और 'ख्याल' से एकल गायन का विकास हुआ। 'ख्याल' गायन में भारतीय एवं विदेशी भाषा एवं बोलियों को भी पर्याप्त मात्रा में अपनाया गया। नवीन राग एवं ताल बने। राग संबंधी शास्त्रीय नियमों की जटिलता हटी। इस प्रकार मुगलकाल में शास्त्रीय संगीत को रोचक एवं सरस बनाने के लिये ख्याल-गायकी का प्रयोग किया गया।

'ख्याल' गायकी में शब्दों का विशेष महत्व नहीं है अर्थात् भाव प्रदर्शन में शब्दों का उपयोग इस शैली में नहीं किया जाता। संगीत का साहित्यिक पक्ष भी इस शैली के प्रचार के पश्चात् क्षीण हुआ है। गायकों का ध्यान राग विस्तार पर केन्द्रित हुआ है। संगीत का भाव-पक्ष, लोक एवं सुगम-संगीत का विषय समझा जाने लगा। संगीत का शास्त्रीय पक्ष परम्परा पर आधारित हो गया अर्थात् मौखिक शास्त्र के रूप में स्थापित हुआ। प्रत्येक कलाकार का कौशल और शैली ही शास्त्र समझी जाने लगी। तैयारी में स्वर एवं लय प्रदर्शन करने की होड प्रारम्भ हुई। अधिक समय तक गाना अभ्यास का परिणाम समझा जाने लगा।

वर्तमान में 'ख्याल' गायक-समाज की सर्वाधिक प्रिय गायन-शैली है। इस शैली के प्रचार एवं प्रसार के लिये गायकों ने अन्य गायन-शैलियों को गौण कर दिया है। गायन के पाठ्यक्रम एवं प्रदर्शनों में 'ख्याल' गायन की प्रधानता रहती है। 'ख्याल' गायकी से आनन्द प्राप्त कर सकें, समाज में बहुत कम व्यक्ति हैं। 'ख्याल' के प्रदर्शनों ने तो शास्त्रीय-संगीत के प्रदर्शनों की हास्यास्पद स्थिति बना दी है। शास्त्रीय संगीत को सुनाने के नाम से साधारण श्रोता चौंकता है तथा किसी प्रकार बिना सुने ही खिसक जाने की चेष्टा करता है। फिर भी गायक 'ख्याल' गाये बिना, अपने स्तर को हीन समझते हैं। संगीत की प्रारम्भिक कक्षाओं के पाठ्यक्रम में भी 'ख्याल' की शिक्षा ही विशेष है। अधिकांश छात्र इसमें रुचि नहीं लेते। छात्रों में संगीत के प्रति उत्पन्न रुचि व प्रेम शिक्षा प्रारम्भ के कुछ दिनों बाद ही समाप्त हो जाता है। संगीत विषय का छात्र जो अन्तिम परीक्षा स्तर को उत्तीर्ण कर चुका है फिर भी जन-गायक नहीं बन सकता।

सौन्दर्य-युक्त भावाभिव्यक्ति करना ही संगीत कला का प्रमुख लक्ष्य है। देखना है कि क्या 'ख्याल' गायन भावाभिव्यक्ति करने में समर्थ है, तो उत्तर हां में मिलेगा। फिर ऐसा क्या कारण है कि 'ख्याल' गायन को समाज पसन्द नहीं करता। गायक का उद्देश्य वर्तमान में रागाभिव्यक्ति मात्र बन गया है। भाव-पक्ष शास्त्रीय संगीत से पृथक होता जा रहा है। अतः संगीत का शास्त्रीय पक्ष केवल कलाकारों अथवा उसमें व्यवसाय करने वालों की रुचि का विषय मात्र बना हुआ है। समाज पर 'ख्याल' गायकी के रुचि को थोपा जा रहा है।

यदि 'ख्याल' को सरस एवं जनरुचि का विषय बनाना है तो इसे भावाभिव्यक्ति योग्य बनाने का प्रयत्न किया जाना चाहिये। राग भावों को व्यक्त करने का साधन है न कि साध्य। राग प्रदर्शन के स्थान पर भाव प्रदर्शन गायक का मुख्य उद्देश्य होना चाहिये।

लोक-संगीत एवं शास्त्रीय संगीत

¿? ¿?

मनुष्य के लोक जीवन में अनेक अवसर आते हैं जिनको वह संगीत के माध्यम से व्यतीत करता है। भारतीय संस्कृति के षोड़स संस्कार संगीतमय है। पर्व—उत्सव, त्यौहार, देवी-देवताओं के गीत लोक जीवन को समृद्ध और खुशहाल बनाने में सहायक हैं। मनुष्य अपनी थकान को मिटाने के लिये गीतों का सहयोग लेता आया है। जाति विशेष के व्यक्तियों ने संगीत को जीविकोपार्जन का साधन भी बना रखा है।

लोक-संगीत में आयु एवं बुद्धि स्तर की कोई सीमा नहीं होती है बालक-बालिकाएं, युवक-युवती, वृद्धि स्त्री-पुरुष सभी सामूहिक स्वरों में गा, बजा और नाचकर अपने भावों को व्यक्त करते हैं। लोक संगीत-लोक जीवन का भागीदार है। लोक संगीत की व्यापक सीमा हैं। संस्कृति के विकास एवं परिष्कार के साथ-साथ लोक-संगीत भी परिवर्तित होता रहता है। मनुष्य के जन्म का इतिहास ही लोक-संगीत का इतिहास है।

प्राकृतिक नाद लोक-संगीत का क्षेत्रफल है। झरनों से प्रवाहित जल,

...ों की कलकल, बादलों की गड़गड़ाहट आदि अनेक ऐसी तरंग ...ती है जो मनुष्य के चित्त को आनन्द प्रदान करती है। चिड़ियों का ...कता और मयूर का नाचना आदि सभी क्रियाएं लोक-संगीत में ...र्निहित है।

मनुष्य की प्रारंभिक अवस्था से ही लोक-संगीत का प्रादुर्भाव होता ...। युग के विकास के साथ मनुष्य अपने जीवन को रसमय बनाने वाले ...ों को भी शिष्ट स्वरूप में परीणित करने की चेष्टा करता रहता है। ...ह प्रयास करने के साथ-साथ शिष्ट संगीत की ध्वनियां प्रभावपूर्ण एवं ...योगी सिद्ध होती है। यह स्वरूप संगीत का शास्त्रीय पक्ष कहलाता है।

शास्त्रीय संगीत मनुष्य की बुद्धि की देन है। इससे मानसिक सुख ...विक प्राप्त होता है। शास्त्रीय संगीत की उत्पत्ति लोक-संगीत को ...शिक्षित करने के फलस्वरूप हुई है। लोक में व्याप्त अनेक "धुनें" हैं। ...ग विशेष की प्रचलित धुनों ने ही राग का रूप धारण किया है। धुनों को ...ग के रूप में परिवर्तित करने के कारण अनेक रहे हैं। मनुष्य अपनी ...अभिव्यक्ति को स्थायी, व्यापक एवं एकरूपता देना चाहता है। ऐसा बिना ...नियम बद्ध रचना के संभव नहीं। लोक धुनों को अपनाने में किसी भी ...कार के बंधन नहीं रखे गये है। फलस्वरूप लोक धुनों को मनुष्य ...अपनी सुविधानुसार परिवर्तित करता आया है।

जैसाकि ऊपर बताया जा चुका है कि लोक-संगीत का प्रयोग ...नव अपने जीवन को सरस बनाने के उद्देश्य से करता आया है। ...पने हितों को ध्यान में रखकर मनुष्य ने शास्त्रीय संगीत को अपनाया है। ...लोक-संगीत के निर्माण का कौशल समूह में निहित है जबकि शास्त्रीय ...संगीत का निर्माण व्यक्ति विशेष की योग्यता पर निर्भर करता है।

लोक-संगीत ही शास्त्रीय संगीत की जननी है। शास्त्रीय संगीत, कलाकार एवं कलाविदों के रंजन का विषय है जबकि लोक-संगीत लोक-रंजन का विषय है।

लोक-संगीत के प्रदर्शन परम्परानुसार अवसर विशेष पर करना आवश्यक होता है किन्तु शास्त्रीय संगीत के संबंध में ऐसी कोई भावना नहीं होती है। लोक-संगीत का श्रोता और कलाकार समाज ही होता है। शास्त्रीय संगीत के श्रोता एवं कलाकार संगीत विषयक जानकारी रखने वाले अल्पसंख्यक विशिष्ट व्यक्ति होते हैं। इस दृष्टि से लोक-संगीत समाज के लिये आवश्यक है।

लोक-संगीत सरल होता है। अतः इसका अनुकरण करना सर्वसाधारण के लिए आसान होता है। शास्त्रीय संगीत नियमबद्ध होता है अतः विशेष शिक्षा द्वारा ही इसे ग्रहण किया जा सकता है। शास्त्रीय संगीत के कलाकारों को लोक-संगीत के कलाकारों से समाज में श्रेष्ठ समझा जाता है। इसका कारण है, शास्त्रीय संगीतकार विशेष साधना एवं ज्ञान प्राप्ति पश्चात् बनते हैं। लोक-संगीत का कलाकार समाज और परिवार का प्रत्येक सदस्य होता है।

लोक-संगीत की परम्परा को समाज स्थापित करता है जबकि शास्त्रीय संगीत की परम्परा प्रयोगों के द्वारा उपयोगिता की दृष्टि से स्थापित की जाती है। शास्त्र सम्मत संगीत को शास्त्रीय-संगीत कहा जा सकता है। जबकि लोक-जीवन में अपनाये जाने वाले संगीत को जिसका निर्माता भी लोक ही है, "लोक-संगीत कहा जाता है।"

वर्तमान में शास्त्रीय एवं लोक-संगीत दोनों ने ही व्यावसायिक रूप धारण कर लिया है। फलस्वरूप दोनों की परम्परा में विकृति आई

संगीत में ताल का महत्व

संगीत में स्वर एवं ताल विशिष्ट स्थान रखते हैं। भाव प्रकाशन हेतु इनका उपयोग किया जाता है। स्वर, ध्वनियों के उतार चढ़ाव को व्यक्त करने के साधन हैं। ताल, गायन की क्रिया को मापने का साधन है। संगीत में जहां शब्दों का प्रयोग नहीं होता है वहां ताल का महत्व बढ़ जाता है। वाद्ययंत्रों एवं नृत्य में ताल का विशेष स्थान है। कुछ वाद्य तो ताल प्रदर्शन के उद्देश्य से ही निर्मित किये गये हैं।

तालबद्ध प्रदर्शन करना गायक, वादक तथा नर्तक का कौशल समझा जाता है। ताल के मर्मज्ञ कलाकार का व्यक्तित्व निखरता है। तालज्ञ होना एक संगीतज्ञ के लिये अति आवश्यक समझा जाता है। किसी ने कहा है—"बेसुरा व्यक्ति महफिल में खट सकता है बेताला नहीं"। संगीत का साधारण श्रोता भी ताल की क्रियाओं एवं गति को अनुभव कर आनन्द प्राप्त करता है। वह लय, मात्रा.

नी, तालों से परिचित नहीं होता किन्तु सम पर गर्दन हिलाने से
रह नहीं रहता।

ताल का आधार-बिन्दु लय है। लय समय की गति को कहते हैं।
ति के सभी कार्यक्रम लयबद्ध है। उनमे जरा भी गत्यावरोध प्रलय का
रण बन सकता है। लोक-संगीत की रचनाए भी लयबद्ध तो होती ही
है। इनमें ताल की प्रारम्भिक अवस्था होती है। अर्थात् ताल को प्रत्यक्ष
में अनुभव किया जा सकता है।

राग का विस्तार स्वरों के द्वारा किया जाता है। संगीतबद्ध रचनाए
लबद्ध होती हैं। जो संगीत तालबद्ध नहीं होता, लयबद्ध अवश्य ही
ता है। स्वरों का विस्तार करने में लय का सर्वाधिक सहयोग होता है।
कलाकार की कल्पना ताल पर ही आधारित रहती है। इसलिये कुछ
कलाकार ताल-प्रदर्शन हेतु ऐसे व्यक्ति का सहयोग सदैव लेते हैं जो उनकी
शैली से परिचित हो। तालज्ञ कलाकार अपनी कला को अधिक सवार-
सुधार कर व्यक्त कर सकता है। ताल की विभिन्न क्रियाएं ही सर्वसाधारण
श्रोता को आनन्द पहुंचाती है।

भारतीय संगीत में कुछ ऐसी गायन शैलियां है जो पूर्णतया ताल पर
अवलम्बित रहती हैं। ध्रुपद धमार में ताल एवं लय संबंधी विशेषता
बड़ है। धमार एवं दादरा आदि गायन-शैलियों के नाम ताल पर ही
धारित हैं। इसी प्रकार गायन-शैलियों में विभिन्नता भी ताल द्वारा
स्थित की जाती है।

ताल द्वारा भाव प्रकाशन भी किया जा सकता है। हिन्दुस्तानी
संगीत पद्धति में प्रयुक्त समान मात्राओं के ताल भिन्न-भिन्न प्रकार के भावों
एवं शैली को व्यक्त करने के कारण विभिन्न तालवाद्यों में वर्गीकृत किये

गये हैं। ताल के अनुकूल ही तालवाद्य का प्रयोग भारतीय संगीत में देख को मिलता है। गीत के भाव अथवा ध्वनि प्रकाशन के अनुकूल ताल ए तालवाद्य निर्धारित किये जाते हैं। भारत के तालवाद्यों में ध्वनि को दू तक पहुंचाने की क्षमता भी मिलती है तथा नजदीक ही सुनाई दे ऐसे वाद भी प्राप्त होते हैं।

ताल के कारण कलाकार एवं श्रोता दोनों को संगीत का आनन्द मिलता है। वर्तमान हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति की विशिष्ट गायन वादन एव नृत्य शैली का उद्देश्य तालवद्ध प्रदर्शन ही है। संगीत की रचना में स्व एवं ताल संबंधी विस्तार करना तथा सम पर विशेष कौशल से मिलन ही हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति का चरम लक्ष है। रचनाओं की विभिन्न बन्दिशें जिनकी परम्परा एवं शैली ने ही 'घराना' को जन्म दिया। तान की बन्दिशें, सम पर मिलने की शैली आदि सभी कार्य ताल से संबंधित है।

नृत्य तो पूर्णतया ताल पर ही अवलम्बित है। आंगिक क्रियाओं का प्रदर्शन, ताल एवं लय के कारण ही नृत्य का सौन्दर्य कहलाता है। बिना ताल के नर्तक के अंग-संचालन मृत प्राय: ही होते हैं। ताल-वादक, गायन, वादन एवं नृत्य को जीवन प्रदान करता है, ऐसा कहना अनुचित नहीं होगा। बिना ताल के संगीत प्राणविहीन पुतला है।

≠≠
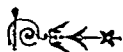
ललित-कलाओं में संगीत का स्थान
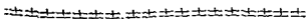
संगीत, चित्र, मूर्ति, स्थापत्य एवं काव्य ललित-कला के अन्तर्गत आते हैं। उपर्युक्त सभी कलाएं सौन्दर्य युक्त भावों को व्यक्त करने के साधन हैं। संगीतकार ध्वनि एवं संकेतों के माध्यम से भाव व्यक्त करता है। ललित-कलाओं के कलाकार संसार के प्रति अपनी अनुभूति की प्रतिक्रिया को संगीत, चित्र, मूर्ति, स्थापत्य एवं काव्य के माध्यम से व्यक्त करते हैं।

सभी कलाओं में चित्रात्मकता का गुण होना आवश्यक है। भावों को व्यक्त करने से पूर्व कलाकार के मस्तिष्क में चित्र उपस्थित हो जाना चाहिये। उसी प्रकार कलाकार श्रोता अथवा दर्शक के समक्ष जब तक भाव-चित्र उपस्थित न कर दे तब तक कला की सार्थकता नहीं समझी जा सकती।

नाद एवं संकेत प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से सभी कलाओं में व्याप्त है, जो संगीत कला के मूल में हैं। नाद एवं संकेतों के माध्यम

से की गई अभिव्यक्ति को प्राणी-मात्र ग्रहण कर पाता
प्रकार ध्वनि एवं संकेतों द्वारा प्राणी-मात्र अपने भाव
प्रकाशित करता है । संगीत कला का यह गुण ऐसा है,
अन्य कलाओं से श्रेष्ठ कहा जा सकता है ।

अन्य कलाओं की बनिस्पत संगीत कला में प्राणी-मात्र
देने की शक्ति भी अधिक है । अबोध बालक, पशु-पक्षी
संगीत-नाद से आनंदित होते हैं । भावों में ध्वन्यात्मकता का
कलाओं के अन्तर्गत होना चाहिये । संगीत कला में यह
है । मनुष्य अपने जीवन को सुखद बनाने का प्रयत्न करता
में सुख देने की परमशक्ति है ।

लौकिक एवं आध्यात्मिक दोनों प्रकार के आनन्द
करने वाली एक मात्र संगीत कला ही है । ईश्वर भी
अराधना से प्रसन्न होते हैं इसीलिये संगीत कला को धर्म,
और मोक्ष प्राप्ति का सर्वश्रेष्ठ साधन समझा गया है ।

भावों का प्रसारण संगीत कला के माध्यम से अन्य
अपेक्षा व्यापक रूप से किया जाना संभव है । अन्य कला
को सुरक्षित रखने के जो साधन उपलब्ध हैं इस प्रका
संगीत कला को प्राप्त नहीं थे । संगीत कला के भावों
एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी द्वारा अनुकरण करने की परम
सकी है । यह अनुकरण व्यक्ति की स्वेच्छा से धारण किया ज

संगीत कला का सर्वाधिक संबंध काव्य से रहा है
गायन विभाग पूर्णतया काव्यकला पर आधारित कहा ज
चूंकि, नाद, भाषा के जन्मदाता हैं फिर भी नाद से

से की गई अभिव्यक्ति को प्राणी–मात्र ग्रहण कर पाता है। उसी प्रकार ध्वनि एवं सकेतों द्वारा प्राणी–मात्र अपने भावों को प्रकाशित करता है। संगीत कला का यह गुण ऐसा है, जिससे इसे अन्य कलाओं से श्रेष्ठ कहा जा सकता है।

अन्य कलाओं की बनिस्पत संगीत कला में प्राणी-मात्र को आनंद देने की शक्ति भी अधिक है। अबोध बालक, पशु-पक्षी आदि सभी संगीत-नाद से आनंदित होते हैं। भावों में ध्वन्यात्मकता का गुण सभी कलाओं के अन्तर्गत होना चाहिये। संगीत कला में यह विशेष गुण है। मनुष्य अपने जीवन को सुखद बनाने का प्रयत्न करता है। नाद में सुख देने की परमशक्ति है।

लौकिक एवं आध्यात्मिक दोनों प्रकार के आनन्द को प्रदान करने वाली एक मात्र संगीत कला ही है। ईश्वर भी संगीतमय अराधना से प्रसन्न होते हैं इसीलिये संगीत कला को धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष प्राप्ति का सर्वश्रेष्ठ साधन समझा गया है।

भावों का प्रसारण संगीत कला के माध्यम से अन्य कलाओं की अपेक्षा व्यापक रूप से किया जाना संभव है। अन्य कलाओं में भावों को सुरक्षित रखने के जो साधन उपलब्ध हैं इस प्रकार के साधन संगीत कला को प्राप्त नहीं थे। संगीत कला के भावों की सुरक्षा एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी द्वारा अनुकरण करने की परम्परा द्वारा रह सकी है। यह अनुकरण व्यक्ति की स्वेच्छा से धारण किया जाता रहा है।

संगीत कला का सर्वाधिक संबंध काव्य से रहा है। संगीत का गायन विभाग पूर्णतया काव्यकला पर आधारित कहा जा सकता है। चूंकि, नाद. भाषा के जन्मदाता हैं फिर भी नाद से कहीं अधिक

इन सब बातों से यह सिद्ध होता है कि संगीत कला का अन्य ललित कलाओं से अटूट संबंध है। कुछ विशेषताएं संगीत की ऐसी हैं जो अन्य कलाओं के सहयोग से और भी अधिक निखार लाती हैं। इन विशेषताओं के कारण अन्य सभी कलाएं संगीत बिना सूनी तथा एवं उजड़ी सी प्रतीत होती है।

प्राणी-मात्र संगीत की भाषा से अपने भावों को व्यक्त कर सकता है तथा दूसरे के भावों को समझकर आनन्द प्राप्त कर सकता है। जैसा आकर्षण अन्यत्र कहां है ?

चित्रपट-संगीत

चित्रपट-संगीत का संबंध नाट्यकला से है। पात्रानुसार संगीत का नियोग इसके अन्तर्गत किया जाता है। संवादों को प्रभावशाली बनाने व नाट्यानुकूल वातावरण तैयार करने में चित्रपट-संगीत ने बहुत उन्नति की है। जनरुचि भी इससे बहुत विकसित हुई है।

चित्रपट-संगीत में नित नवीन धुनों को अपनाने का प्रयत्न किया जाता है। संगीत-रचनाएं संक्षिप्त किन्तु आकर्षक रूप से प्रस्तुत की जाती हैं। लोकधुनों एवं पाश्चात्य संगीत का उपयोग चित्रपट-संगीत ने खुलकर किया है। चित्रपट-संगीत के क्षेत्र में काम करने वाले कलाकारों ने सुन्दर एवं प्रभावपूर्ण शैली से प्रत्येक भावों को व्यक्त कर दिखाया है। अतः बिना संगीत के चलचित्र की सफलता सम्भव प्रतीत नहीं होती।

भारतीय चित्रपट-संगीत ने देश-विदेश में ख्याति प्राप्त की है। आकाशवाणी से इसके प्रसारण की मांग अन्य कार्यक्रमों से कहीं अधिक होती है। सभी वर्गों के व्यक्तियों को यह संगीत प्रिय है। चित्रपट-संगीत

इन सब बातों से यह सिद्ध होता है कि संगीत कला का अन्य स ललित कलाओं से अटूट संबंध है। कुछ विशेषताएं संगीत की अपनी जो अन्य कलाओं के सहयोग से और भी अधिक निखार लाती है। कु विशेषताओं के कारण अन्य सभी कलाएं संगीत बिना सूनी तथा उज एवं उजड़ी सी प्रतीत होती है।

प्राणी-मात्र संगीत की भाषा से अपने भावों को व्यक्त कर सकता तथा दूसरे के भावों को समझकर आनन्द प्राप्त कर सकता है। संगी जैसा आकर्षण अन्यत्र कहां है?

=
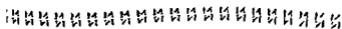
चित्रपट-संगीत

चित्रपट-संगीत का संबंध नाट्यकला से है। पात्रानुसार संगीत का उपयोग इसके अन्तर्गत किया जाता है। संवादों को प्रभावशाली बनाने एवं नाट्यानुकूल वातावरण तैयार करने में चित्रपट-संगीत ने बहुत उन्नति की है। जनरुचि भी इससे बहुत विकसित हुई है।

चित्रपट-संगीत में नित नवीन धुनों का [illegible] का प्रयोग किया जाता है। सुगीत-रचनाएं संक्षिप्त किन्तु आकर्षक रूप में प्रस्तुत की जाती है। लोकधुनों एवं पाश्चात्य संगीत का उपयोग चित्रपट-संगीत ने भरपूर किया है। चित्रपट-संगीत के क्षेत्र में काम करने वाले कलाकारों ने सुन्दर एवं प्रभावपूर्ण शैली से प्रत्येक भावों को व्यक्त कर दिखाया है। अब बिना संगीत के चलचित्र की सफलता सम्भव प्रतीत नहीं होगी।

भारतीय चित्रपट-संगीत ने देश-विदेश में ख्याति प्राप्त की है। आकाशवाणी से इसके प्रसारण की मांग [illegible] कार्यक्रमों से ज्यादा होती है। सभी वर्गों के व्यक्तियों को यह संगीत प्रिय है। चित्रपट-

वर्तमान की देन है। कुछ समय में ही यह इतना लोकप्रिय होगया है कि शेष सभी संगीत की परम्परा पिछड़ गई है। देश के कोने-कोने में चित्रपट-संगीत की स्वरलहरी सुनाई देती है।

संगीत की परम्परा अनुकरण से विकसित होती है। सर्वसाधारण की अनुकरण क्षमता बढ़ाने एवं स्वर-ताल युक्त वातावरण तैयार करने में चित्रपट-संगीत के योगदान का लाभ संगीत-संसार को प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में अवश्य मिला है। शास्त्रीय-संगीत के प्रति साधारण श्रोता के हृदय में विशेष प्रकार के भाव विद्यमान थे जिसके फलस्वरूप संगीत का यह पक्ष नीरस एवं अनुपयोगी समझा जाता रहा है। किन्तु चित्रपट पर यही संगीत बहुत ही रोचक एवं सरस रूप से व्यक्त किया गया है। इस प्रकार साधारण श्रोता की शास्त्रीय-संगीत के प्रति दुर्भावना को मिटाने में चित्रपट-संगीत का महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

चित्रपट-संगीत से सम्बन्धित कार्य करने वाले कलाकारों को पर्याप्त यश एवं धन प्राप्त हुआ है। साधारण श्रोता एवं दर्शक के हृदय में भी कलाकार के प्रति सम्मान उत्पन्न हुआ है। कलाकारों का जीवन-स्तर सुधरा। संगीत सीखने एवं सुनने के प्रति जन-साधारण की लालसा बढ़ी। इस क्षेत्र में नये कलाकार आये। सांस्कृतिक आदान-प्रदान हुआ। स्वस्थ मनोरंजन प्राप्त हुआ। संगीत सीखने वाले शिक्षार्थियों की संख्या बढ़ी है। समाज का ऐसा वर्ग जो संगीत एवं संगीतकारों से घृणा करता था वही अपने बालकों को संगीत-शिक्षा दिलाने की आवश्यकता महसूस करने लगा है।

साधना के स्वर

हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति में शुद्ध और विकृत स्वर, साधना हेतु हैं। स्वराभ्यास करने का उद्देश्य ध्वनि संबंधी विकारों को दूर करना है। स्वराभ्यास करने से मनुष्य की आयु बढ़ती है तथा उसे मानसिक शांति मिलती है। स्वराभ्यास एक प्रकार का व्यायाम है जिसमें ध्वनि प्रसारित करने वाली शारीरिक क्रिया शक्तिशाली होती है। स्वराभ्यास संगीत का योग है। साधक को इससे आध्यात्मिक सुख मिलता है। इसके अलावा हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति के अनुसार आवाज में निम्नलिखित मुख्य विशेषताएं स्वराभ्यास द्वारा प्राप्त होती हैं—

(१) स्वरों को प्रत्येक स्थान (मंद्र मध्य एवं तार) तक आसानी से प्रयोग करने की क्षमता बढ़ाना।

(२) स्वरों की ध्वनि में स्थिरता लाना अर्थात् ध्वनि-कम्पन को रोकना।

(३) एक स्वर से दूसरे स्वर तक आवाज को पहुंचाने में कुशलता बढ़ाना।

(४) स्वर के उपयुक्त ध्वनि को उच्चरित करने योग्य क्षमता बढ़ाना अर्थात् स्वरों की ध्वनियों में कमी या अधिकता न रहे।

की परम्परा को ज्यों की त्यों बनाए रखने के पक्ष में हैं और कुछ विरुद्ध में। किन्तु इस सत्य को तो मानना ही पड़ेगा कि अपने आपको शिष्ट कहने वाले समाज ने भी चित्रपट के कारण लोकसंगीत में भी सरसता प्राप्त की। एक स्थान विशेष की रचनाओं की लोकप्रियता अन्य स्थानों पर भी समान रूप से हो सकी, ऐसा चित्रपट-संगीत के सहयोग से पूर्व में नहीं था चित्रपट से संगीत की प्रदर्शन शैली में संक्षिप्त एवं माधुर्य भावों को प्रोत्साहन मिला और चमत्कारिक प्रदर्शन गौण हुए।

≠≠

▷◁

साधना के स्वर

BBBBBBBBBBBBBBBBBBBBBBBBBBBBBBBBBBBB

हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति में शुद्ध और विकृत स्वर, साधना हेतु है। स्वराभ्यास करने का उद्देश्य ध्वनि संबंधी विकारों को दूर करना है। स्वराभ्यास करने से मनुष्य की आयु बढ़ती है तथा उसे मानसिक शांति मिलती है। स्वराभ्यास एक प्रकार का व्यायाम है जिससे ध्वनि प्रसारित करने वाली शारीरिक तंत्रियां शक्तिशाली होती है। स्वराभ्यास संगीत का योग है। साधक को इससे आध्यात्मिक सुख मिलता है। इसके अलावा हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति के अनुसार आवाज में निम्नलिखित मुख्य विशेषताएं स्वराभ्यास द्वारा प्राप्त होती है —

(१) स्वरों को प्रत्येक स्थान (मंद्र, मध्य एवं तार) तक आसानी से प्रयोग करने की क्षमता बढ़ाना।

(२) स्वरों की ध्वनि में स्थिरता लाना अर्थात् ध्वनि-कम्पन को रोकना।

(३) एक स्वर से दूसरे स्वर तक आवाज को पहुंचाने में कुशलता बढ़ाना।

(४) स्वर के उपयुक्त ध्वनि को उच्चरित करने योग्य क्षमता बढ़ाना अर्थात् स्वरों की ध्वनियों में कमी या अधिकता न रहे।